पू. आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी का देवलोक गमन

जीवन भर मन, वचन व काय से त्याग और तपस्या का पावन संदेश देने वाली आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी का शुक्रवार को देवलोक गमन हो गया। माताजी ने श्री सुपार्श्व संत निवास, बड़ के बालाजी में शरीर त्यागा। 84 वर्षीय माताजी विगत कुछ समय से अस्वस्थ थीं। शुक्रवार सुबह भगवान का अभिषेक व अन्य धार्मिक क्रियाऐं पूर्ण होने के बाद माताजी ने 9,30 शरीर त्यागा। इससे पहले उन्होंने अन्न जल का त्याग कर दिया था। माताजी के समाधिमरण का समाचार सुनते ही बड़ के बालाजी परिसर में भीड़ उमड़ पड़ी। दूर दूर से लोग माताजी के अंतिम दर्शनों को आये। माताजी की अंतिम क्रिया शुक्रवार शाम 4 बजे हुई।

पू. माताजी 2008 से जयपुर में ही चातुर्मास पर थीं। वे गणिनी आर्यिकाओं में देश में सर्वोच्च मानी जाती थीं। आर्यिकाश्री के निधन का समाचार सुनते ही संपूर्ण भारतवर्ष के जैन समाज में शोक की लहर छा गई। आर्यिकाश्री की अंतिम यात्रा बैंड बाजों से मधुबन, बड़ के बालाजी, अजमेर रोड से निकाली गई। अंतिम यात्रा में पूरे देश से हजारों श्रद्धालु शामिल हुए।

पू. माताजी ने नागौर के मैन्सूर में हरकचन्द ..... के परिवार में जन्म लिया। नागौर के ही इंद्रचंद बड़जात्या के साथ उनका विवाह हुआ। 13 वर्ष की आयु में ही इनका झुकाव अध्यात्म की ओर हुआ। माताजी ने 55 वर्ष पूर्व जयपुर में चूलगिरी में आ. श्री शांतिसागर महाराज के पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से दीक्षा ली। दीक्षा से मृत्यु तक के 55 वर्षों में उन्होंने लगभग 40 हजार कि.मी. पदयात्रा की। 80 से अधिक पुस्तकों का लेखन व अनुवाद किया तथा उनके सान्निध्य में 40 से अधिक समाधियां हुईं।

माताजी की साहित्य संपदा –

आ. अकलंक`व विरचित राजवार्तिक (प्रथम खण्ड)

आ. अकलंक देव विरचित राजवार्तिक (द्वितीय खण्ड) का हिन्दी अनुवाद

आ. श्रुतसागर सूरि विरचित तत्वार्थवृत्ति का हिन्दी अनुवाद

आ. कुन्दकुन्द विरचित षट्प्राभृत श्रुतसागर सूरि टीका का हिन्दी अनुवाद

आ. सोमदेव सूरि विरचित योगसार का हिन्दी अनुवाद

आ. कुलभूषण विरचित सारसमुच्चय का हिन्दी अनुवाद

आ. वीरनन्दी विरचित आचार सार का हिन्दी अनुवाद

आ. शुभचन्द्र विरचित परमाध्यात्मतरंगिणी का हिन्दी अनुवाद

आ. समंतभद्र स्वामी विरचित स्तुति विद्या का हिन्दी अनुवाद

माताजी के कुल चातुर्मास –

सन्	स्थान	सन्	स्थान
1957	जयपुर दीक्षा एवं चातुर्मास	1984	मधुबन
1958	नागौर	1985	गिरीडीह
1959	लाडनूं	1986	बारसोई
1960	सुजानगढ़	1987	गुवाहाटी
1961	सीकर	1988	तिनसुकिया
1962	लाडनूं	1989	डीमापुर
1963	अजमेर	1990	गुवाहाटी
1964	चांपानेर	1991	विजयनगर
1965	सनावद	1992	नलबाड़ी
1966	औरंगाबाद (महा.)	1993	गौरीपुर
1967	कुभोज बाहुबली	1994	मधुबन
1969	अकलूज	1995	मधुबन
1970	कारंजा	1996	कलकत्ता
1971	मधुबन	1997	कलकत्ता
1972	कलकत्ता	1998	श्रीमहावीरजी
1973	धुलियान	1999	जयपुर
1974	किशनगंज	2000	नागौर
1975	गुवाहाटी	2001	सीकर
1976	डीमापुर	2002	उदयपुर
1977	विजयनगर	2003	पारसोला
1978	कानकी	2004	पारसोला
1979	भागलपुर	2005	निम्बाहेड़ा
1980	मधुबन	2006	भीलवाड़ा
1981	गिरीडीह	2007	जयपुर
1982	मधुबन	2008	नेमीसागर कॉलोनी, जयपुर
1983	मधुबन	2009	श्याम नगर, जयपुर
		2011	बड़ का बालाजी, जयपुर

पूर्वांचल क्षेत्र में माताजी के संघ ने सर्वत्र विहार करके जैन धर्म की जो प्रभावना की है वह स्वर्ण अक्षरों से लिखने लायक है। इस इक्कीसवीं शताब्दी में जैन धर्म के प्रचार और प्रसार के लिये मुनि, आर्यिका, त्यागी, व्रतियों ने जो अनवरत प्रयत्न किया है, वह आज के इतिहास में अभूतपूर्व है। देश–देशान्तर में भ्रमण करना, रूखा सूखा अनियमित एक बार आहार लेकर रहना, प्रतिदिन प्रवचन–उपदेश करना, निन्दा–स्तुति से उपेक्षित रहकर सर्व साधारण को आत्मज्ञान, संयम रहने को प्रोत्साहित करना तथा बदले में किसी प्रकार के प्रतिग्रहण की आशा न रखना साधुकी अपनी विशेषता रहती है। यही विशेषता धर्म के प्रचार–प्रसार को प्रभावक बना देती है।

महान त्यागी तपस्विनी पूज्य सुपार्श्वमती माताजी का संघ एक ऐसा ही साध्वी संघ है जिसने देश के कोने कोने में धर्म की जागृति की है। पूर्वांचल प्रदेशों में एक लम्बे अर्से तक विहार करके आपने इस अंचल में जैन धर्म का जो शंखनाद किया है वह शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता। मेरा यह परम सौभाग्य रहा है कि पू. आर्यिका संघ को अत्यन्त निकटता से देखने एवं दर्शन करने का अवसर प्राप्त होता रहा है। जब भी उनके निकट बैठी, उनका वात्सल्य, स्नेह और आशीर्वाद हृदय को प्रेरणा देने वाला सिद्ध हुआ। यह उनकी निकटता, आशीर्वाद एवं शिक्षा का ही फल है कि मैं अपने आपको एक बहुत ही बदला हुआ इंसान महसूस करती हूं।

आदि तीर्थंकर के काल से ही आर्यिकाओं के अस्तित्व का पता चलता है। भगवान ऋषभदेव की सुपुत्रियों ब्राह्मी तथा सुन्दरी ने अपने पिता से दीक्षा ले ली थी और धर्म चक्र के प्रवर्तन में उनका महत्वपूर्ण स्थान था। अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के धर्मचक्र प्रवर्तन में चंदना माता का इसी प्रकार अप्रतिम योगदान रहा है। इस दैदीप्यमान परिपाटी में प्रातः स्मरणीय पू. सुपार्श्वमती माताजी का संघ आता है जिसने अनेक कष्ट सहन करके भी इस क्षेत्र में जैन धर्म की दुन्दुभि बजाई है।

पू. सुपार्श्वमती माताजी का बहुज्ञता, सूक्ष्म तलस्पर्शिनी बुद्धि, अकाट्य तर्कणा शक्ति एवं हृदयग्राही प्रतिपादन शैली अद्‌भुत थी और विद्वत् संसार को भी विमुग्ध करने वाली थी। आपकी प्रवचन शैली विलक्षण थी। श्रोतागण अभिभूत हुए बिना नहीं रहते थे। विशाल जन समुदाय के समक्ष जिस निर्भीकता से आप आगम का क्रमबद्ध धाराप्रवाह प्रतिपादन करती थीं तो ऐसे लगता था जैसे साक्षात् सरस्वती के मुख से अमृत झरता रहा हो। आपके प्रवचन आगमानुकूल अकाट्य तर्कों के साथ प्रवाहित होते थे। समझाने के लिये व्यावहारिक उदाहरणों को भी आप ग्रहण करती थीं परन्तु कभी विषयान्तर नहीं होती थीं। चार–चार पांच–पांच घंटा एक ही आसन से धर्म चर्चा में निरत रहती थीं। उच्च कोटि के विद्वान भी अपनी शंकाओं का आपसे समीचीन समाधान प्राप्त कर संतुष्ट हो जाते थे।

ऐसी परम तेजस्वी पू. माताजी आज यद्यपि हमारे बीच नहीं हैं फिर भी उनके सदुपदेश रूपी सौरभ निरन्तर हमारे जीवन को महकाती रहेगी। पुनः मैं उनके चरणों में वंदामि अर्पित करती हूं तथा कामना करती हूं कि वे शीघ्र ही परमपद मोक्ष की प्राप्ति करें।

नमनकर्त्री

सुशीला पाटनी,

आर. के. हाऊस,